# ।। गुरू सिष को संवाद ।।

# मारवाडी + हिन्दी

# ( १–१ साखी)

महत्वपूर्ण सुचना–रामद्वारा जलगाँव इनके ऐसे निदर्शन मे आया है की,कुछ रामस्नेही सेठ साहब राधाकिसनजी महाराज और जे.टी.चांड्क इन्होंने अर्थ की हुई वाणीजी रामद्वारा जलगाँव से लेके जाते और अपने वाणीजी का गुरु महाराज बताते वैसा पूरा आधार न लेते अपने मतसे,समजसे,अर्थ मे आपस मे बदल कर लेते तो ऐसा न करते वाणीजी ले गए हुए कोई भी संत ने आपस मे अर्थ में बदल नही करना है । कुछ भी बदल करना चाहते हो तो रामद्वारा जलगाँव से संपर्क करना बाद में बदल करना है ।

* बाणीजी हमसे जैसे चाहिए वैसी पुरी चेक नही हुओ,उसे बहुत समय लगता है। हम पुरा चेक करके फिरसे रीलोड करेंगे। इसे सालभर लगेगा। आपके समझनेके कामपुरता होवे इसलिए हमने बाणीजी पढनेके लिए लोड कर दी ।

|| अथ गुरू सिष को संवाद लिखंते ||

शिष्य वायक || चोपाई ||

प्रथम सिष सतगुरू कुं बुजे || मो पर किरपा किजे ||
भ्रम क्रम दुबद्या भे भांजो || सिष को सरणे लीजे ||१||

सतगुरू सुखरामजी महाराज से,शिष्य ने सर्व प्रथम स्वयम् का भ्रम,कर्म,भय व दुबध्या भंग करके,शरण में रखनेकी प्रार्थना की । ||१||

उपजे खपे जीव जुग बन्धीया || छुटन सके कोई ||
माया ब्रम्ह हुवे किम न्यारा || भेव बतावो मोई ||२||

जीव संसार में उपज रहा,खप रहा व ब्रम्हा,विष्णू और महादेव इस त्रिगुणी माया के बंधनो मे अटक गया । छूटना चाहता तो भी छूट नही पा रहा,इसलिए यह जीव माया से छूटकर ब्रम्ह कैसे होगा । यह भेद मुझे बतावो । करके गुरू महाराज से प्रार्थना करता । ||२||

भगत जोग जुग सबे बखाणे || दसवी ग्यान सरावे ||
ब्रम्ह जोग केसे नर साजे || परा भक्त किम पावे ||३||

सभी जगत भक्ती योग याने दसवेद्वार पहुँचनेका ज्ञान सराते है । ऐसा ब्रम्ह जोग याने पराभक्ती,कैसे साधते है व प्राप्त करते है,यह भेद मुझे सिखावो । ||३||

भिन भिन भेव सकळ बिध कहिये || किरपा कर समझा वो ||
न्यारा अरथ करण बिध सारी || प्रगट मोय लखावो ||४||

पराभक्ती को अलग-अलग विधी से कृपा करके,पुरा ज्ञान समजावो । पराभक्ती का अलग- अलग सारा अर्थ व सभी झीनीसे झीनी विधीयाँ मुझे समजावो । ||४||

गुपता अरथ कुंप जळ कहीये || पंछी पीव सके नही कोई ||
तम सत्तगुरु केण बिध लायक || प्रगट कहीये मोई ||५||

यह पराभक्ती का अर्थ उंडा है । गहरे कुएके पानी जैसा है,गहरे कुँए से पंछी पानी पी नही सकते । आदि सतगुरू सुखरामजी महाराज,आप ये सारे अर्थ,विधीया जीवोको समजाने लायक हो । इसलिये ये सभी अर्थ व विधीया,मुझे प्रगट करके बतावो । ||५||

सब ही अर्थ करो जळ सरवरा || भर भर पीवे बिचारा ||
ऊगे सुर गेल सब दरसे || उजड पंथ नियारा ||६||

सब अर्थ सरोवर के जल समान करके सुणावो । जैसे सरोवर के जलको सभी पशु पक्षी पेट भर-भर के पीते । वैसे सभी जीव पराभक्ती सहजमे समझ लेंगे । ऐसा करके बतावो। सुरज उगने पे उजड तथा पक्का रास्ता जीवको जैसे भिन्न-भिन्न तरह से सुजता,वैसे ही पराभक्ती का ज्ञान भिन्न-भिन्न तरह से सुजे,ऐसी ज्ञान रचना करनेकी कृपा करो। ||६||

सब बिध रित राह गुर कहीये || झाटक मोय बतावो ||
तोल मोल किमत गुण किरीया || शब्द बंध उर ल्यावो ||७||

पराभक्ती की सभी विधीयाँ,रीत,रास्ते झाड झटककर कुछ बाकी न रखते हुए मुझे बतावो। तोल,मोल,किंमत,गुण,क्रिया,शब्द बन्ध जीवके हृदय में बैठे ऐसे समजावो । ।।७।।

**तिनु ध्रम हद कुं बरणो ।। कसर न राखो कोई ।।**
**कुंण कुंण धरम कुंण फल लागे ।। सो मुझ दो बताई ।।८।।**

हद के ब्रम्हा,विष्णू ,महादेव के धर्मो का कोई कसर न रखते वर्णन करो । किस–किस भक्ती का,क्या फल लगता यह सब मुझे बतावो । ।। ८ ।।

**कुंण कुंण धरम किसी बिध साजे ।। हाल चाल सब कहिये ।।**
**देह बिध रूप धरे जुग माई ।। कहो किसी बिध रहिये ।।९।।**

कौनसा–कौनसा धर्म,किस–किस विधी से साजे जाता,ऐसे तीनो धर्मो की हाल–चाल,सब मुझे कहो । संसार में अलग–अलग देह रूप धारण करते है,वे अलग–अलग देह किस–किस विधी से करते है यह बतावो । ।।९।।

**किरपा करो गुर सिष उपर ।। प्रसण होय बिस्तारो ।।**
**सब जुग भेद भेव सो दिजे ।। सिष कुं सरण ऊबारो ।।१०।।**

ये आप गुरू शिष्य पे प्रसन्न होकर,विस्तार से बतावो । सम्पूर्ण जगत का भेद मुझे आप दो व मुझे शरण में लेकर,माया से बचा लो । ।।१०।।

**प्रथम रीत कहो नवध्या की ।। नख चख सहेत बतावो ।।**
**आद अन्त नेपत केण किरीया ।। शब्द भेद दरसावो ।।११।।**

प्रथम नवधा भक्ती की नाखून से लेकर चक्षु तक,सभी रीत समजावो । जैसे खेत में बोने से लेकर अनाज पाने तक क्रिया होती है । वैसे शब्द का आदसे अंत तकका भेद बतावो ।।११।

गुरू वायक ।।

**सिष पर माया मेर गुर किनी ।। भक्त भेद मुख भाखे ।।**
**सावधान सबही होय सुंण ज्यो ।। कसर कोर नही राखे ।।१२।।**

।। गुरूउवाच ।।

सतगुरू ने शिष्य से प्रिती कर,सभी भक्तीयो का झाड झटककर भेद बताया । यह भेद सभी सावधान होकर सुने । सुनने मे कसर कोर मत रखो । ।।१२।।

**सुण सिष भक्त भेद सब न्यारी ।। नवधा नव प्रकारी ।।**
**गावे सुणे टेल लघुताई ।। मुरत पुज बिचारी ।।१३।।**

सुनो शिष्य,सभी भक्ती का भेद,सब अलग–अलग है । नवधा भक्ती नौ प्रकार की है । १ –श्रवण,२–किर्तन,३–सुमिरन,४–पादसेवा,५–पूजा,६–वन्दना,७–दास्य,८–सख्य,९आत्म– निवेदन इस प्रकार से नवधा भक्ती नौ प्रकार की है ।

१ – श्रवण :– कोई ज्ञान या पद गाये,कान से सुनना ।

२ – किर्तन :– ग्यान व पदका किर्तन करना ।

३ – सुमिरन :– नित्य मुख से नाम का सुमिरन करना ।
४ – पादसेवा :– सेवा करना,चन्दनादिक अर्चन करना ।
५ – पूजा :– मुर्तीकी पुजा करना ।
६ – वन्दना :– नित्य मंदिर में जाना ।
७ – दास्य :– दास भाव रखना ।
८ – सख्य :– बिना कपट के मैत्री रखना ।
९ – आत्मनिवेदन :– आत्मनिवेदन करना ।

किर्तन करना,कान से सुनना,टहल करना (साधू की या पत्थर की मूर्ती की),सेवा करना, लघुताई रखना,मूर्ती पूजा करना ।।१३।।

**सरवण सुण ज्ञान नर सीख्या ।। भिन भाव बहो राखे ।।**
**छापा तिलक गले बोहो माला ।। नाम सुर गुण नित भाखे ।।१४।।**

कानों से ज्ञान सुनकर सीखना,बहुत भिन्न भिन्न तरहसे भाव रखना,छापा,तिलक लगाकर गले में बहुत सी(तुलसी की,रूद्राक्ष की,चन्दन की)माला डालना और मुख से सगुण नाम का नित्य जप करना । ।।१४।।

**बरत बास इग्यारस करणी ।। धाम तिर्थ फिर जावे ।।**
**सेवा करे सपांड़ा जल ले ।। चोका नित्त दिरावे ।।१५।।**

व्रत करना,उपवास करना,एकादशी करना और सभी धामों में तथा तीर्थो में घुमने जाना,सेवा करना,पानी लेकर पानी से स्नान करना तथा चौका लगाना । ।।१५।।

**पाणी पीवे डोर सुं खांचर ।। उन मांही बोहो किरीया ।।**
**बेर बेर पाणी पग धावे ।। भांय बायर घर फिरीया ।।१६।।**

अपने हाथों से रस्सी से पानी खींचकर पीता है ।(मारवाड़ देश में कुछ जगहों को छोड़कर अन्य सभी जगहों पर मोट का पानी पीते है परन्तु ये सोहळा (पवित्रता)रखनेवालेअपने हाथ से रस्सी से पानी खींचकर पीते है । मोट का पानी नही पीते है ।)बहुत सी उत्तमता रखकर, बहुत सी क्रियायें करते है । और बार–बार जमीन पर पैर रखने पर या बाहर से घूमकर घर में आने पर बार–बार पैर धोते है । ।।१६।।

**सील साच संतोष सम सुं ।। कर फेरे नित्त माला ।।**
**दया दान देवळ नित्त जाणो ।। ज्या त्या फिरे वो पाळा ।।१७।।**

ऐील (ब्रम्हचर्य)रखना,साँच (विश्वास)सन्तोष और समता(सभी को अपनी आत्मा के जैसा जानता है ।)तथा नित्य हाथों में माला फिराते रहता है ।(मुँख से नाम जप करे,या न करे, परन्तु हाथों में माला फिराते रहता है । मुँख से दूसरी बाते कहते रहता है,तो हाथ में माला शुरू रखता है ।)और मन में दया रखना,दान देना तथा नित्य मंदिर में जाना । जहाँ–जहाँ जाता है,वहाँ–वहाँ पैरों से ही जाता है ।(गाड़ी के उपर या घोड़े पर

नही बैठता है ।)और देव दर्शन करने जाते समय पैरो में बिना जूते जाता है । ||१७||

ब्रम्हा बिस्न महेसर तीनुं || दुबध्या दोय न जाणे ||
निंद्या तजे नांव नित्त लेवे || सब कूं सरस बखाणे ||१८||

ब्रम्हा,विष्णू,महेश इन तीनों को एक ही जाणता मतलब तिनो देवतामें फरक नही करता । सभी को विष्णूका रुप जाणता । जगतके सभी छोटे मोटे देवता एवम् प्राणी मात्रा को खुदसे उंचा पकड्ता,किसी की भी जरासीभी निंदा नही करता व नित्य(मायावी)नाम का जप कराता ।१८।

सेवा करे चंनण बोहो चरचे || गावे सुणे सियाणा ||
नवद्या भक्त इसी बिध कहि ये || अे अंग सोच भै आणा ||१९||

सभी देवताओं की पूजा करके,सभी देवताओं की मुर्ती के उपर,बहुत सा चन्दन चर्चता (लगाता)है । स्वयं पद गाता है और दूसरों का सुनता है । समजदारीपणा से रहता है । इस तरह की भक्ती को नवधा भक्ती कहते है । भक्ती मे दोष न रहे सोचकर भयभीत रहता है । ||१९||

साचे मते होय जन साजे || कसर न राखे काई ||
तब फल जाय लगे नवद्या को || बिसन लोक के मांई ||२०||

इस तरह से सच्चे मत से विश्वास रखकर,भक्त बनकर साधेगा व साधना करने में,कोई भी कसर नही रखेगा । तब जाकर इस नवधा भक्ती का फल लगेगा । इस नवधा भक्ती का फल विष्णू के लोक(वैकुण्ठ)में मिलेगा । ||२०||

तन मन धन सिस कुं सूंपे || काची कदेन ल्यावे ||
अे अंग मिल्या निसो दिन झूंजे || बिसन लोक नर जावे ||२१||

अपना तन,मन,धन यहाँ तक की अपना शिश भी सौंप देगा और मन में कभी भी कच्चा पन नही लाता है । इस तरह के स्वभाव से रात-दिन झुंजेगा । वही मनुष्य विष्णू के लोक वैकुण्ठ में जायेंगा । ||२१||

जिग जाप सो जोग जपीजे || चित्त चेतन सुध होई ||
गत मुगत बिसन फल पावे || कपट न राखे कोई ||२२||

यज्ञ करते है,जाप करते है,योग साधते है,जाप जपते है और चित्त चेतन शुद्धी रखते है । चित्त में किसी प्रकारकी अशुद्धता आने नही देते है । और कोई भी कपट नही रखते है । जिससे मुक्ती में जाकर,विष्णू के वैकुण्ठ लोक का फल मिलता है । ||२२||

सुण सिष बिसन भक्त बिध न्यारा || अे अंग साजे साधू ||
जेसी सजे मुक्त गत तैसी || इधक न ओछी बाधू ||२३||

शिष्य सुनो । विष्णू के भक्ती की यह विधी है । ये ऐसे स्वभाव कोई साधू साधेगा,उसे विष्णू का लोक मिलेगा । जैसी भक्ती साजेगा वैसी ही उसे मुक्ती और गती मिलेगी ।

उसका फल अधिक भी नही और छोटा भी नही,या कम या अधिक कुछ नही मिलेगा ।(जैसे भक्ती उससे साधे जायेगी,उतना ही फल उसे मिलेगा ।)।।२३।।

**च्यारूं मुक्त बैकुंठ बिराजे ।। न्यारी तुज दरसाऊँ ।।**
**नांव रीत न्यारी नर पावे ।। बिष्ण भेद ऊर लाऊँ ।।२४।।**

वैकुण्ठ में चार मुक्ती रहती है,वे चार तरह की चारौ मुक्ती,तुझे अलग–अलग बताता हूँ । उन मुक्तीयों के नाम अलग–अलग और रीती भी अलग–अलग है । विष्णू का भेद ह्रदय में लाते है । उन्हे ये मुक्ती मिलती है । ।।२४।।

**सालोक जो समीप ।। सायुज बोहोत बखाणी ।।**
**सारूप भक्त मुक्त वे पावे ।। कहुं भेद तत्त छाणी ।।२५।।**

पहली मुक्ती सालोक्य(विष्णू के देश वैकुण्ठ में जाना),दूसरी सामीप्य(सभा में जाकर बैठना) और तीसरी मुक्ती सायुज्य(विष्णू के पास छोटे भाई की तरह बैठना)और चौथी मुक्ती सारूप्य(विष्णू के जैसा विष्णू ही हो जाना ।)इस तरह से इसका भेद का तत्त छानकर कहता हूँ । ।।२५।।

**पेलो मुक्त लोक मे आया ।। दुजी सभा बिराजे ।।**
**तिजी मुक्त पास ले बेठा ।। चोथी बिष्ण कहीजे ।।२६।।**

पहली मुक्ती विष्णू के लोक वैकुण्ठ में आना,दूसरी मुक्ती विष्णू की सभा में आकर बैठना, तिसरी मुक्ती विष्णू अपने पास में लेकर बैठता है और चौथी मुक्ती विष्णू रुप का विष्णू ही हो जाना । ।।२६।।

**तन मन अर्प भक्त कुं साजे ।। जुग सुख बंछे न कोई ।।**
**मन की मूंठ विष्ण पद मांहि ।। सुख दु:ख लगे न दोई ।।२७।।**

जो कोई भक्त अपना तन,मन अर्पण करके भक्ती साधेगा और इस जगत के सुखो की कोई वन्छना नही करेगा । सुख और दु:ख मालुम नही करते मन की पक्ड विष्णू के पद में रखेगा । ।।२७।।

**सेवा मांय बिराजे सनमुख ।। बात बिगत नही करणी ।।**
**काम काज सब ही बिध तज के ।। सुरत बिसन मे धरणी ।।२८।।**

और सेवा में सेवा करने सामने बैठे रहने पर किसी से बाते नही करेगा । कुछ भी नही बोलेगा सब विधी का कामकाज छोड के अपनी सुरत विष्णू में लगा देगा । ।।२८।।

**मुरत मांय मन ले घाले ।। दुजी सुध बिसरावे ।।**
**लाय लगे बेरी सीर आवे ।। ऊठ भाग नही जावे ।।२९।।**

अपने मन को लेकर विष्णू की चरणों में लगा देगा और दूसरी सभी याद,भूल जायेगा । पूजा करने के लिए मुर्ती के सामने बैठे रहने पर आग लग गई या कोई दुश्मन मारने के लिए उपर चलकर आया तो भी पूजा में से उठकर भाग कर नही जायेगा । ।।२९।।

चरणा मत लहे प्रसादी || रामकिसन की सेवा ||
सालग राम खोळ नित पीवे || बिष्ण भक्त अे भेवा ||३०||

मुर्ती का धोया हुआ चरणामृत लेता है । और प्रसादी लेता है । राम और कृष्ण के मूर्ती की पूजा करता है । और शालीग्राम धो-धोकर धोया हुआ पानी पीता है । ये सभी विष्णू की भक्ती का भेद है । ||३०||

अेसी रीत बिध सब साजे || बिष्ण लोक मे जावे ||
सुखरत बंधे पले नर जेतो || ताहाँ लग मांय रहावे ||३१||

ऐसी रीती से सारी विधी साधेगा वही विष्णू के लोक में जायेगा । वहाँ विष्णू के लोक में पल्ले में सुकृत(पुण्य)बंधा हुआ जब तक रहेगा तब तक मनुष्य को वैकुण्ठ में रहने देते है । ||३१||

जुग मे रहे ब्रत कूं साजे || सेंस जुग करे सेवा ||
नेचे आण पडे धरणी पर || तीन लोक सु देवा ||३२||

संसार में रहकर इस तरह का प्रणव्रत साध कर,हजार युगो तक सेवा करेगा । तब विष्णु के लोक का देवता बनेगा इसप्रकार से तीनों लोकों में बने हुये देव धरती पर आकर चौऱ्याशी लक्ष योनीमे पडेंगे । ||३२||

आवा गवण मिटे नही कोई || जम जंजाळ नही चुके ||
सुख दुख दोय तांके रहे संगी || असवार चोर ज्युं ढुके ||३३||

विष्णू लोक में आना,जाना,जन्मना,मरना कोई नही मिटता है । और वैकुण्ठ में जाने से यम का जंजाल कोई चूकता नही है । वैकुण्ठ के सुख और चौऱ्याशी के फेरे का दु:ख विष्णू के लोक में गये तो भी उनके संग में ही रहता है और घुड़स्वार जैसे चोर चोरी करके जाता है तो उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे जाते है । वे घुड़स्वार जाकर चोर को पकड़ लेते है । उसी तरह से काल विष्णू के लोक में जाकर विष्णू के भक्तों को पकड़कर ले आता है । ||३३||

ने:चे मुक्त नही हे कोई || च्यार दिना सुख कहिजे ||
जब चल काल बिश्न कुं पकडे || कुण सरण तब रहिये ||३४||

वैकुण्ठ में जाने पर निश्चिंत याने सदा की ही मुक्ती नही है । वहाँ वैकुण्ठ में चार दिन का सुख है उसे भोग लो । जब यह काल चलकर जाकर विष्णू को ही पकड़ेगा तब विष्णू के भक्त किसकी शरण में रहेंगे । ||३४||

विष्ण धर्म शंकर सुख दाई || तीन लोक बिस्तारा ||
जेसी करे तेसी गत पावे || सुण सिष अेह बिचारा ||३५||

विष्णू धर्म और शंकर धर्म सुख देनेवाले है । इस विष्णू और महादेव तीन लोक स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक और पाताल लोक का विस्तार है । मनुष्य जैसी करनी करेगा वैसीही

गती उसे मिलेगी । यह शिष्य तुम सुनो व इसका विचार करो । ||३५||

**आवा गवण बोहोर नही आवे || सुख दु:ख धरे न काया ||**
**सो पद ब्रम्ह क्रम सुं न्यारो || सत्तगुर मोय लखाया ||३६||**

आवागमन में पुन: नही आयेगा । माया के सुख और काल के दु:ख ये तो तब छूटेंगे,की जब शरीर नही धारण करेगा । वह पद सतस्वरुप ब्रम्हका है । वह पद माया याने कर्म कालसे न्यारा है । ऐसा पद सतगुरू ने मुझे समझाया । ||३६||

**प्रम पद बिध भेद बिचारा || आगे सिष बताऊँ ||**
**अब सुण देव लोक की बातां || भांत भांत सुं लाऊँ ||३७||**

परम पद की विधी का भेद पूछते हो,तो हे शिष्य,वह मैं तुम्हे आगे बताऊंगा । अभी तो तुम देवलोक की बाते भिन्न भिन्न तरह से लाकर मैं बताता हूँ ,उसे सुनो । ||३७||

**तपस्यां करे जत कुं साजे || करवत झांप भरे हे ||**
**ज्यां मन जक्त जीवतां राखे || ताहि जन्म धरे हे ||३८||**

कोई तपश्या करेगा । कोई जत्त(ब्रम्हचर्य)साधेगा । कोई काशी में करवत(आरा)चलवायेगा और कोई झाप लेकर मरेगा । संसार में जिते जहाँ मन रखेगा,वही मरने पश्चात जाकर जन्म लेगा । ||३८||

**राजा राव पातस्या जुग मे || तपस्या कर फल पावे ||**
**इनमे फेर करारी खांचे || देव लोक मे जावे ||३९||**

और राजा,राव और बादशाह ये संसारमें तपश्या करके फल पाते है । तपश्या करनेवाला राजा होता है । थोड़ी तपश्या करनेवाला राव होता है । अती कठिन तपश्या करनेवाला बादशाह होता है । और योग भ्रष्ट हुए लोग जहाँगिरदार,जमीनदार और सेठ साहुकार या हुद्देदार, अमलदार होते है । तपश्या करके तपश्या का फल पाते है और इनसे अती कठिन तपश्या करते है,वो देव लोक में जाते है । ||३९||

**जिग सो करे एक सो जुग मे || बिच बिंधुसन पावे ||**
**तां के ध्रम जाय व्हे इंद्र || सुर तेतीस सरावे ||४०||**

सौ यज्ञ करके सौ यज्ञ के बाद एक अश्वमेध यज्ञ करता है । ये एक सौ यज्ञ करने में यज्ञ विध्वंस नही होगा तो इस यज्ञ के धर्म से जाकर तैतीस कोटी देवों का राजा इन्द्र बनता है । फिर तैतीस कोटी देव भी उसे अपना राजा मानकर उसकी शोभा करते है । ||४०||

**अभेदान किन्या दे गायां || सील झूट नही भाखे ||**
**बोहो बिध ध्रम करे नर जुग मे || देव लोक मे राखे ||४१||**

और कोई अभेदान याने भयभीत हुए को भयरहीत करना और अपनी पत्नी को अच्छे कपड़े तथा अच्छे गहने पहनाकर पत्नी का दान लेनेवाले से खरीद लेते है उसे अभेदान कहते है ।) और कोई कन्या दान करेगा और कोई गौ दान करेगा । शील(ब्रम्हचर्य)पूर्वक

रहेगा । झूठ कभी भी नही बोलेगा । बहुत विधी से ये धर्म कोई मनुष्य संसार में करेगा । उस मनुष्य को देव लोक में रहने देते है । ||४१||

**सुक्रत पले बन्ध्यो जांहां लग || धिन्न धिन्न नर होई ||**
**खुटे दाम पलक नही राखे || कोलु तजे वे छोई ||४२||**

उसके पल्ले में बंधा हुआ सुकृत,जब तक उसके पास रहता है,तब तक उसे देवलोक में धन्य –धन्य कहते है । उसके पास का सुकृतरुपी दाम समाप्त हो जाने पर,उस पलभर भी देव लोक में रहने नही देते । जैसे गन्ने का रस निकालने का कोल्हू गन्ने का रस निकल जानेपर छिलका बाहर फेक देता है । उसी तरह से पुण्य समाप्त हो जाने पर,गन्ने का रस निकाल लेने के बाद,बचे हुए खोई के जैसा फेक देते है,वैसे देवता के लोक देव बाहर हो जाते है । अपने लोक से बाहर कर देते है । ||४२||

**सुर तेतीस देवता कहिये || सुक्रत कर कर हुवा ||**
**मुक्ति मोख प्रम पद कहिये || तां सुं रे गया जुवा ||४३||**

ये देवलोक तैतीस कोटी जो देवता कहलाते है,वे मृत्युलोक में मनुष्य शरीर से सुकृत करके, देव लोक में देवता बने हुए है । जिसे मुक्ती,मोक्ष और परमपद कहते है,उससे ये देवता लोग अलग ही रह गये । ||४३||

**सुक्रत कियो जुग के मांही || देव लोक मे जावे ||**
**उलटा जाय हुवा वां दुखीया || नर देह अब कब पावे ||४४||**

यहाँ मृत्युलोक में जो मनुष्य सुकृत(अच्छे कर्म)करते है,वे देव लोक में जाते है । और वे वहाँ दु:खी हो जाते है और उन्हे दु:ख होता है,कि अब हमें मनुष्य देह कब मिलेगी । ||४४||

**जब तो काळ बुध थी थोड़ी || देव लोक ही बुझ्या ||**
**प्रम पद की खबर न पाई || अबे परे तत्त सुझ्या ||४५||**

जब हमे मनुष्य शरीर मिला हुआ था,उस समय हमे बुद्धी नही थी । इसलिए देवलोक को ही बड़ा समझकर,देवलोक में ही जाने की पूछताछ की । की देवलोक में बड़े सुख है,देवलोक से अधिक बड़ा कोई भी नही है,ऐसा समझ रहे थे । परन्तु यहाँ देवलोक में आनेपर,देवलोक एकदम तुच्छ दिखाई देने लगा । यहाँ से पुण्य समाप्त हो जानेपर चौरासी लाख योनी में आना पड़ेगा और चौरासी लाख योनी में से किस योनी में जायेंगे,इसका अपने सामने चित्र दिखाई देता है । और यहाँ देवलोक में कितने वर्ष रहेंगे उतने फूलों का हार अपने गले में पहना दिया है । यहाँ एक वर्ष पुरे होनेपर गले के फूलों के हार में से हर साल एक फूल गलकर गिर जाता है । जिससे बचे हुए फूलों से और यहाँ कितने वर्ष रहना पड़ेगा वह सामने दिखाई देता है । बचे हुए फूलों को गिनने पर और उम्र कितनी बच गयी है यह मालुम पड़ता है । वह सामने दिखाई देता है,इसका बहुत डर

 || राम नाम लो, भाग जगाओ || राम

लगता है । मृत्यु लोक में आयु कितनी रह गयी यह मालुम नही पड़ता है । इसलिए मृत्यु का डर मालुम नही होता है । परन्तु यहाँ तो प्रत्येक वर्ष पुरा होनेपर गले के हार में से एक-एक फूल गलकर गिर जाता है जिससे मृत्यु सामने दिखाई देती है । हम जब मनुष्य शरीर में थे,उस समय हमें परम पद की खबर मिली नही परन्तु अब इस देवलोक से परे का तत्त सूझने लगा । ॥४५॥

**पसरी बुध सुध सब सारे ॥ सब मे रही समाई ॥**
**मुक्त प्राण नार नर हूवा ॥ अब सो सरे न काई ॥४६॥**

अब अपनी बुद्धी फैली । अब हम सभी में सुध,बुध समा रही है । अब हमे अपने उपर का लोक और पद दिखाई देता है । और यहाँ के देव लोकों के सुख तुच्छ मालुम होता है । मनुष्य शरीर में से स्त्री-पुरूष प्राण मुक्त याने मृतक हो जाने के बाद अब परम पद पाने का कोई भी काम नही कर सकते है । ॥४६॥

**निर्बळ प्राण इंद्रिया थाकी ॥ सूज बूज बळ होई ॥**
**काम धाम नर अकल बतावें ॥ फळ सो लग्या न कोई ॥४७॥**

मनुष्य शरीर में अन्तीम समय में प्राण निर्बल हो जाता है । और सभी इन्द्रियाँ थक जाती है । सोच विचार करने की शक्ती का बल नही रहता है । और मनुष्य उम्रमे किए हुये शुभ काम-धाम तथा अक्ल से परमपद का फल प्राप्त नही हुआ । ॥४७॥

**देव लोक सारी बिध साजे ॥ हद बे हद के मांही ॥**
**केवळ ब्रम्ह विष्ण लग पेला ॥ वा गत समजत नांही ॥४८॥**

देवलोक की सारी विधियों की साधना की । हद और बेहद की भी सभी विधीयों की साधना की । परंतु विष्णू से भी आगे,कैवल्य ब्रम्ह है उसकी गती नही समझे ।॥४८॥

**ताके लिये बंछे नर देही ॥ परा भक्त अब किजे ॥**
**आवा गवण जन्म अर मरणा ॥ क्रम काट सब दिजे ॥४९॥**

इसलिए देवलोक के देव मनुष्य देह की वंछना करते है,वही मनुष्य देह जिसकी देव चाहत करते है,उसी मनुष्य शरीर में अभी हम है,हमे मनुष्य देह मिली हुयी है,तो इसमें)पराभक्ती कर लो व आवागमन,जन्म लेना और मरना तथा सभी कर्म काट लो । ॥४९॥

**सुण सिष देव लोक की बातां ॥ इण बिध सकळ बुहारा ॥**
**कहुँ कांहा लग समजे थोडी ॥ अेक अर्थ मे सारा ॥५०॥**

देवलोक की बाते शिष्य सुनो । इस विधी का सभी व्यवहार है । मैं अधिक क्या कहूँ थोड़े में समझ लो । एक अर्थ में सभी बाते समझ लो । ॥५०॥

**अब सुण सरब भक्त मत्त दाखु ॥ रित बिध गत न्यारी ॥**
**ब्रम्हा को सत धाम कहीजे ॥ तिण आ मान्ड पसारी ॥५१॥**

अब सुनो । सभी भक्ती और सारी रीती तथा सारे मत मैं दिखाता हूँ । सभी विधी और

गती अलग–अलग बताता हूँ । ब्रम्हा का जो सत्तलोक कहते है । जिस ब्रम्हा ने सृष्टि का यह सारा पसारा किया है । उस ब्रम्हा के लोक को सत्तलोक कहते है । ।।५१।।

**ब्रम्हा रटत केवळ पद नेचे ।। अन्तर ध्यान समाया ।।**
**आठ पोर दिन रात रेण मे ।। एक ब्रम्ह लिव लाया ।।५२।।**

वह ब्रम्हा स्वयं उस कैवल्य पद का निश्चित होकर रटन करता है । और अतंर मे सतस्वरुप ब्रम्ह के ध्यान मे समाता है । वह ब्रम्हा स्वयं आठो प्रहर रात–दिन एक सतस्वरुप ब्रम्ह से लीव लगा रखता है । ।।५२।।

**संख ग्यान जुग मांय ऊचाऱ्यां ।। आप मिलण का भेवा ।।**
**जो नर कसे सजे सो नेचे ।। ब्रम्ह मिले हर देवा ।।५३।।**

उसी ब्रम्हा ने संसार में संसार के लोगों के लिए सांख्य ज्ञान का उच्चारन करके,सांख्य ज्ञान साधकर,अपने में मिलने का भेद बताया है । जो मनुष्य कसकर सांख्य योग की साधना करेगा और निश्चय करेगा तो उसे ब्रम्ह मिलेगा याने सतस्वरुप हर मिलेगा। ।५३।

**संख जोग ऐसी बिध साजे ।। सो सिष तोय बताऊँ ।।**
**चेतन होय सुध मन राखे ।। ब्रम्ह भेव सब गाऊँ ।।५४।।**

सांख्य योग की साधना करने की यह विधी है । इसतरह से साधना करनी चाहिए उसे मैं हे शिष्य,तुम्हे बताता हूँ । तुम हुशार होकर मन शुद्ध रखकर सुनो । मैं भिन्न भिन्न तरह से तुम्हे सतस्वरुप ब्रम्ह मिलणे का भेद बताता हूँ । ।।५४।।

**आतम ब्रम्ह सकळ मे देखे ।। दिष्ट पडे सो देवा ।।**
**निंद्या दोस बेर नहीं बंधे ।। सेज सकळ की सेवा ।।५५।।**

सभी में आत्म ब्रम्ह देखो,जो जो देह दृष्टी में आये उसे आत्मदेव ही मानो । किसी की निन्दा मत करो,किसीसे द्वेष करके किसीसे वैर मत बाँधो । सभी की सेवा सभी आत्मदेव है, समजकर सहज मे करो । ।। ५५ ।।

**सुक्रत करे दोष के बांधे ।। पाप पुन्न जुग मांही ।।**
**दोनु देख सम मन राखे ।। निंदे बंदे सो नाही ।।५६।।**

कोई सुकृत करते,कोई नीच कर्म करते,कोई संसार में पाप करते और कोई संसार में पुण्य करते,तो वे दोनों(सुकृत करनेवाला और नीच कर्म करनेवाला,पाप करनेवाला और पुण्य करने वाला,दोनों को भी)देखकर दोनों का आत्मदेव समजकर दोनों पर अपना,मन समान रखो । दोषी(गुनाह करनेवाला)और पापी(पाप करनेवाला),की निन्दा और सुकृत या पुण्य करनेवाले की,वंदना नही करता याने दोनों को मन से एक समान जाणता । ।।५६।।

**करणी करम करे ना बरजे ।। सेजां सकळ बुहारा ।।**
**सुख दु:ख दोय एक कर जाणे ।। आप सकळ सुं न्यारा ।।५७।।**

पुण्य,पाप करनी कर्म स्वयं करता भी नही और पुण्य,पाप करनी कर्म करनेवाले दूसरो को मना भी नही करता है । सब मे आत्मदेव है यह समजकर सहज रुप में सब व्यवहार करता व माया के सुख व काल का दु:ख इन दोनों को एक करके जानता है । मै सभी सुख दु:ख से परे अलग आत्मदेव हुँ ऐसा सदा सहजमे व्यवहार रखता । ।।५७।।

**एसो अर्थ करे मन भीतर ।। ब्रम्ह बिना नही कोई ।।**
**सब ही अरथ आद ले देखे ।। हर बिन अवर न कोई ।।५८।।**

और मन में ऐसा अर्थ करता कि सतस्वरुप ब्रम्ह के अलावा कुछ भी नही है । करनेवाला और करानेवाला सतस्वरुप ब्रम्ह ही है । ब्रम्ह के अतिरीक्त दूसरा कोई भी नही है । सभी के आदी का ग्यान देखकर देखता कि आदी से हर(रामजी)के अलावा दूसरा कोई भी नही है । ।।५८।।

**सातु धात तिन गुण प्रगत ।। पांच तत्त बिन नांई ।।**
**जुग सो खेल आप ही हुवा ।। फेर बिराजे मांई ।।५९।।**

सातो धातु,तीन गुण और पच्चीस प्रकृती,पाँच तत्त्व ये हर बिना नही है । इस संसार के खेल मे वह स्वयं हर ही आया और वही सभी के अन्दर बैठा । ।।५९।।

**ऐसा ग्यान बिचार समाया ।। होणहार सुं होई ।।**
**सुर्ग नरक भू लोक पताळा ।। अे हर बिन अवर न कोई ।।६०।।**

कि जैसा होनहार है वैसा होगा ऐसा ज्ञान मन में धारण किया रहता है और वह ऐसा समझता है कि स्वर्ग क्या और नर्क क्या भू लोक क्या और पाताल क्या यह सब हरी के अलावा दूसरा कुछ भी नही है । ।।६०।।

**च्यारू खाण बाण सो सारा ।। नख चख सकळ पसारा ।।**
**दुतिया भाव दोय नही जाणे ।। माया ब्रम्ह नियारा ।।६१।।**

चारो खान में और चारो वाणी में नख से लेकर आँखो तक सब हरका ही पसारा है । उनमें दुतिया भाव से हर व माया ऐसे दो नही जानता है याने माया तथा ब्रम्ह अलग–अलग न जानते सभी एक ही सतस्वरुप ब्रम्ह ही है ऐसे जानता है । ।।६१।।

**जेसे समद भर्‍यो जळ पाणी ।। लहर दिसन्तर जावे ।।**
**वांही एक निर्जळ सितळ ।। केबत दोय कुवावे ।।६२।।**

जिस प्रकार से समुद्र के पानी की लहर दूर देशान्तर जाती है,उसे लहर कहते है परन्तु समुद्र का पानी और वह लहर कोई दो नही होते हुए एक ही है । इसी तरह से माया और ब्रम्ह को एक ही समझता है । समुद्र का पानी और लहर पानी एक ही है यानी दोनों में पानी ही है । दोनों में शीतलता एक ही है । सिर्फ कहने के लिए पानी और लहर दो कहलाते है ।(इसी प्रकार से ब्रम्ह तो स्वंयम पुर्ण ब्रम्ह है ही ऐसे ही माया मे भी वही पुर्ण ब्रम्ह ही है । इस प्रकार माया व ब्रम्ह एक ही है ऐसा जानता और दुजा कुछ नही है ऐसा

 || राम नाम लो, भाग जगाओ ||

जाणता । ||६२||

**अेसो ग्यान सरबते कहिये ।। भजे तजे नही पेले ।।**
**आपी ब्रम्ह क्रम कुण कहिये ।। युं होय जन जुग खेले ।।६३।।**

ऐसा ज्ञान समजकर सभी में एक ही सतस्वरुप ब्रम्ह समझता है । किसीका भजन भी नही करता और किसीको छोड़ता भी नही है । खुद ही ब्रम्ह है खुद माया नही है फिर कर्म किसे कहा जाय ऐसा होकर वे संत जगत में रहते है । ||६३||

**भै दुख सोच जुग नही भ्यासे ।। हरषे नही कुमलावे ।।**
**तोटो नफो बरा बर देखे ।। युं सुखमांय समावे ।।६४।।**

उन्हे संसार में किसी का भी भय या दु:ख या सोच फिक्र का भास नही होता है और वे अच्छा होने से हर्षित नही होते और बुरा होने पर उदास होकर मुरझाते भी नही है । वे संसार में हानी या लाभ को समान जानते है । इस तरह से वे सुख में समा जाते है । ||६४||

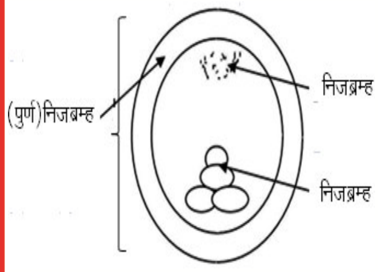


**ओ निज ब्रम्ह अटळ अविनासी ।। ना कहुं गया न आया ।।**
**जनमे मरे जका बिध अेसी ।। कपड़ा ब्होर बणाया ।।६५।।**

वे इस जीव को निज ब्रम्ह,पुर्ण निजब्रम्ह समान अटल और अविनाशी याने नाश नही होनेवाला,कही गया भी नही और कही से आया भी नही ऐसा समझते है । जगत में जन्म लेता है और मरता है उसे ऐसी विधी समझते है जैसे शरीर का पहना हुवा कपड़ा पुराना होकर फट गया । फिर दूसरा बनवाते है । इसीतरह से यह देह पुरानी होकर गिर गयी और जन्म लिया यानी दूसरे नये कपड़े की तरह बन गयी,ऐसा समझता है । ||६५||

**युं मन ग्यान बिचारे सोऊँ ।। करे करावे नांई ।।**
**सब मे ब्रम्ह अेक ले चीने ।। ऊँच नीच के माहि ।।६६।।**

इस तरह से मन में सब ज्ञान समझते है,कि हम कुछ नही करते और कुछ कराते भी नही । ऐसा ज्ञान समझते है । सब में एक ही निज ब्रम्ह है ऐसा जानते है । ऊँची जाती का हो या नीच जाती का हो सभी में एक ही निज ब्रम्ह है ऐसा जानते है ||६६||

सिष वायक ||

**सिष बुजे गुर देव कहिजे ।। संख नाम किम दिया ।।**
**जे नर कस जीत मन बैठा ।। सेजां कुण फल लिया ।।६७।।**

|| शिष्य वचन ||

तब शिष्य ने कहा । शिष्य पूछता है कि हे गुरूदेवजी यह मुझे बताईये कि यह जो आपने बताया,इसे सांख्य नाम किसलिए दिए । जो मनुष्य मन को कसकर और मन को जीतकर बैठे है उन्हे सहज मे क्या फल मिलता है । ||६७||

**किरपा करो भेद सब दीजे ।। सिष का भ्रम गमावो ।।**

संख साज जन कहां समावे || सो ध्रम मोय बतावो ||६८||

कृपा करके सब भेद देकर शिष्य का भ्रम गवाँ दिजीए । यह सांख्य योग की साधना करके वे संत कहाँ जाकर समाते है । वह धर्म मुझे बताईये । ||६८||

गुर वायक ||

सत्तगुर कहे सुणो सिष सुन मुख || संख नाम इम दिया ||
सब ही ब्रम्ह भ्रम नही कोई || अर्थ देख घर लिया ||६९||

|| गुरू वाक्य ||

सतगुरू बोले कि हे शिष्य,सम्मुख होकर सुनो । इसे सांख्य नाम इस कारणसे दिया,कि सर्वत्र सतस्वरुप ब्रम्ह ही ब्रम्ह है । सतस्वरुप ब्रम्ह के अलावा कोई और है यह भ्रम नही है । ऐसा अर्थ देखकर,सतस्वरुप ब्रम्ह का घर मनसे देखते । ||६९||

सो जन संख जोग इधकारी || सो प्रजा मन भावे ||
सब ही टेल बन्दगी कर हे || चरणा सब चल आवे ||७०||

वे ही जन सांख्य योग के अधिकारी है । वे संत प्रजा के मन में भाते है । उस संत की सभी टहल याने सेवा,बंदगी करके सभी उनकी चरणों में चले आते है । ||७०||

प्रथम संख फूल फळ लागे || अे सुख माँय समाया ||
ब्रम्ह हरक बोहो हुवा राजी || देव लोक मे आया ||७१||

प्रथम सांख्य योग का फूल और फल जो लगता है,उसे सुनो । वो सुख में जाकर ब्रम्हा के सतलोक मे समा जाते है । उनका निज ब्रम्ह हर्षित होकर बहुत राजी होता और वो ब्रम्हा के देव लोक में आता || ७१ ||

ब्रम्हा का सत्त लोक बखाणे || धिन्न धिन्न जन होई ||
आवा गवण जनम अर मरणो || ओ सिर मिटे न कोई ||७२||

ब्रम्हा के सत लोक में वहॉ के देव आनेवाले देव की धन्य-धन्य ऐसी करके महिमा करके वे ब्रम्हा के लोक में धन्य हो जाते है,परन्तु उनका आवागमन,जन्म लेना-मरना नही मिटता है । ||७२||

दोहा ||

सिष बुज्यो गुर देव कहयो || संख जोग मत छाण ||
सुण चेला नेहचळ नही || चाकर घणी बखाण ||७३||

शिष्य ने पूछा और गुरू ने बताया । इस सांख्य योग का मत गुरू ने छानकर बताया । गुरू ने कहा शिष्य सुनो । यह ब्रम्हा का लोक निश्चल नही है याने प्रलय में जायेगा,चाकर याने सांख्य योग की साधना किए हुए और धनी याने ब्रम्हा ये दोनों स्थिर निश्चल याने अमर नही है । ||७३||

अनन्त क्रोड़ आगे गया || फेर अनंता ही होय ||
सुण चेला उण ब्रम्ह की || निमष न बरते कोय ||७४||

ये ब्रम्हा अनन्त कोटी पहले हो गये और आगे भी अनन्त बार होंगे । परन्तु शिष्य सुनो । इतनी बार में उस सतस्वरुप ब्रम्ह का निमिष भी व्यतीत नही होता है । ।।७४।।

**क्या ब्रम्हा केता भया ।। सरब काळ की चार ।।**

**सुण चेला तिहुँ लोक मे ।। सब शिर जम की मार ।।७५।।**

यह ब्रम्हा क्या वस्तु है?ये ब्रम्हा पहले कितने ही हो गये,सभी ब्रम्हा काल का चारा है । जो ब्रम्हा पूर्वकाल में हुए,उन्हे काल खा गया और भविष्य में भी जो होंगे । वे सभी ब्रम्हा काल का चारा है । तो शिष्य सुनो । इस तीनों लोक में सभी के उपर,काल की मार है । यम सभी को खा जाता है ।) ।।७५।।

**सत्त शब्द श्रणो सही ।। नेहचळ नेम धान ।।**

**सुण चेला सुखराम कहे तत्त बाहिरा ।। सब मत्त उला जाण ।।७६।।**

इस सतशब्द की शरण लेना सही है,क्यों कि वह सतशब्द निश्चल है और उसका ध्यान भी निश्चल है । सतगुरू सुखरामजी महाराज कहते है,कि इस तत्त सार याने ब्रम्ह मत के अलावा जो दूसरे मत है वे सभी मत इधर के माया के ही है,ऐसा जानो ।।७६।।

सिष वायक ।।

**धिन सम्रथ गुर देवजी ।। धिन दर्सण दीदार ।।**

**पतत उधारण बापजी ।। मो शिर टाळो मार ।।७७।।**

शिष्य ने कहा कि समर्थ गुरूदेवजी आप धन्य हो व आपके दर्शन भी धन्य है और दिदार भी धन्य है । पतीतों का उद्धार करनेवाले बापजी मेरे सिर की मार टाल दो । ।।७७।।

**नवद्या भक्त संख निरणा किया ।। कसर न राखी कोय ।।**

**किरपा कर गुर देवजी ।। वो जोग बतावो मोय ।।७८।।**

आपने नवधा भक्ती का और सांख्य ज्ञान का निर्णय किया । निर्णय करने में कोई कसर नही रखा,अब गुरूदेवजी महाराज,कृपा करके,हट योग मुझे बता दिजीए । ।।७८।।

**कळ किमत सबही कहो ।। बरणो बिध बोहार ।।**

**क्या करणी साजन किया ।। को फल चाले लार ।।७९।।**

हट योग की कल और किमत सब बताईये और उस मत की विधी और व्यवहार वर्णन कर । उसकी करनी क्या?उसकी साधना कौनसी?और उसे साधने से,कौनसा फल साथ में चलेगा यह बताइये । ।।७९।।

**जोग रीत की बिध कहो ।। साज कुंण घर जाय ।।**

**क्या फळ अन्तर आद ले ।। कहां जन रहया समाय ।।८०।।**

उस योग के रीती की विधी बताईये । और उस योग की साधना करनेवाला किस घर में जाता है । और उसका क्या फल अन्त और आदी में मिलेगा । और यह योग साधनेवाले संत कहाँ समाकर रहते है । ।।८०।।

गुर वायक ।। चोपाई ।।

सतगुर कहे सुंणो सिष भेवा ।। जोग साजण का भाखुं भेवा ।।
ओऊँ शबद ऊठतो लेवे ।। मन सो सुरत पवन मे देवे ।।८१।।

सतगुरू ने कहा कि हे शिष्य सुनो भेद योग साधने का भेद मैं कह रहा हूँ । ओऽम् शब्द श्वाँस उठते समय लेते है और मन और सुरत पवन(श्वांस)में देते है ।।८१।।

सिध आसण साजे नर साई ।। बूंदे सातु पोल मिलावे दोई ।।
डावो पाँव गुदा तळ ठेवे ।। दुजो पाँव लिंग पर देवे ।।८२।।

और सिद्धासन की सब साधना करना चाहिए । और शरीर के नवो दरवाजे बन्द करके मिला दो । वो इस प्रकार से,बायें पैर की एड़ी गुदा के नीचे देकर एड़ी पर बैठकर,गुदाद्वार बन्द करो और दूसरे यानी दाहिने पैर को लिंग पर रखकर इन्द्रिय को दबाकर बन्द करो । ।।८२।।

सर्वण मांय अगुँठा दिजे ।। अंगळी पाँच नेण धर लिजे ।।
मुख कुं रोक होट सुं लिया ।। मन सो घेर नाभ मे दिया ।।८३।।

और दोनो हाथों के दोनो अँगूठे दोनों कानों में रखकर दबाकर बन्द करो और दोनों हाथों की तर्जनी आँखोपर रखकर दबाओ । दोनो हाथों की मध्यमा(बीच की अँगूली)से नाक के छिद्रों को दबाकर रखो और कनिष्ठ तथा अनामिका से होट को नीचे उपर से,चिमटा की तरह दबाकर मुँख बंद करो । और मन को घेरकर लाकर नाभी में लगा दो । ।।८३।।

मूळ चक्र क्रिया नर साजे ।। तब शिर शब्द अनाहद गाजे ।।
सांस ऊँसास पवन कुं खंचे ।। मन की लीव सुरत सुं अंछे ।।८४।।

इस तरह से मूल द्वार के चक्र की क्रिया साधेगा। तब सिर के उपर(भृगुटी में)अनहद शब्द गरजने लगेगा।(कानों में अँगूठे से दबाने पर,एक तरह की ध्वनी सुनाई देती है,वही ध्वनी भृगुटी में गरजने लगती है।)इस तरह से श्वांसो–श्वास से,श्वांस उपर खीचो । मन की डोर
सुरत से खीचो । ।। ८४ ।।

च्यार मांस असा हट किया ।। जब जन कंवळ गुदा तज दिया ।।
खट कंवळ की सता ऊठाई ।। घेरो पडयो नाभ दळ मांई ।।८५।।

इस प्रकारसे साधक चार महिने हट्ठ करेगा तब वह साधक गुदा का कमल(मूल चक्र) छोड़कर उपर चढ़ने लगेगा । छः पंखुड़ीके कमल की(ब्रम्हा के स्थान की)सत्ता उठा देगा । तब नाभी कमल में आकर श्वांस का घेरा पड़ेगा । ।।८५।।

पवन चक्र नाभ में खावे ।। अणमाऊं होय ऊँचो आवे ।।
अष्ट कंवळ दळ खाली किया ।। द्वादश पांख कंवळ मन दिया ।।८६।।

नाभी में श्वांस आकर चक्कर खाने लगेगा और अमावू(पेट में माता नही)होकर,श्वांस उपर चढ़ने लगता है । नाभी के आठ पंखुड़ी के कमल को खाली करके,उपर हृदय के

बारह पंखुड़ी के कमल में मन लगा दिया । ||८६||

**हट सो करे पचे दिन राती || फेरे मन सुरत कुं जाती ||**
**काम काज सब तजे बोहारा || निस दिन पच्चे पवन की लारा ||८७||**

यहाँ हृदय में हठ करके,रात–दिन पचने लगता है । मन और सुरत इधर–उधर जाती है । उसे घेरकर एक स्थान पर(हृदय में)लाते है। और संसार के दूसरे सभी काम–काज करना और सारा व्यवहार छोड़ देता है। रात–दिन इस श्वांस के पीछे लगकर,उपर चढ़ाने के लिए पचते रहता है । ||८७||

**खट सो मास वर्ष हट किजे || तब सज ध्यान भृगुटी लिजे ||**
**आ क्रिया इसी बिध बखाणी || भ्रगुटी भेद तत्त बिध जाणी ||८८||**

इस तरह से छ: महीने या वर्षभर हट करेगा । तब ध्यान साधकर,कंठ के सोलाह पंखुड़ी के कमल में से गले में(कंठ में पड जीभ है उस पड़ जीभ को एकदम बारीक छिद्र है उस छिद्र से होकर भृगुटी में जाता है । इस प्रकार की भृगुटी के भेद की तत्त विधी है वह मैने तुम्हे बताई है वह तुम जान लो । ||८८||

**जब लग कसे सजे जन काया || तब लग आहार छुछम कर भाया ||**
**सागट सभा सकळ कुं त्यागे || निद्रा छुछम रात दिन जागे ||८९||**

जब तक इस योग की साधना कसकर करेगा,तब तक आहार(भोजन)सुक्ष्म(थोड़ासा)लो । और सागट(निंदक)लोगों की सभा में जाने का त्याग करो । और नींद एकदम कम लो,रात दिन जगे रहो । ||८९||

**चाले गेले कबु नहीं धावे || मुख सुं बेण छुछम सो लावे ||**
**बायर दशा इसी विध कहिये || आसण इड़गं ईकन्तर रहिये ||९०||**

रास्ते से चलते समय कभी भी जल्दी–जल्दी दौड़ते हुए मत चलो। एकदम आराम से शरीर को धक्का न लगे,ऐसे चलो और मुँख से बोलना हो तो एकदम सुक्ष्म थोड़ासा बोलो। बाहर की दशा इस तरह से रखो। ऐसा आसन अडिग लगाकर एकांत में रहो। ||९०||

**देखा देख सजे नही कोई || उपजे दोस रोग तन होई ||**
**साचा गुरू सिष व्हे सुरां || साजे जोग चड़े मुख नुरा ||९१||**

यह योग दूसरो को करते हुए देखकर नही साधे जायेगा । दूसरो का देखकर कोई साधेगा तो उसके शरीर में रोग उत्पन्न होगा । शरीर के श्वांस से दोष उत्पन्न होकर वात,पित्त,कफ हो जायेगा । मारवाड़ी में एक कहावत है कि देखा देखी साजे जोग, छीजे काया उपजे रोग सच में तो इस योग का भेदी गुरू मिले और शूरवीर के जैसा साधना करनेवाला शिष्य होगा,तभी वो शिष्य,इस योग की साधना करेगा,तब इस शिष्य के मुँखपर हट योग साधना का तेज आ जायेगा । ||९१||

सिष वायक ||

सिष बुजे सुणो गुर देवा || झूठ सांच का कहिये भेवा ||
कुण गुर साच झुठ कुंण कहिये || कहो सिष सूर किसी बिध रहिये ||९२||

तब शिष्य ने कहा कि मैं आपसे पूछता हूँ हे गुरूदेवजी आप सुनिए । इस झूठे गुरू का और सच्चे गुरू का भेद मुझे बताईये । किस गुरू को सच्चा कहे और किस गुरू को झूठा जाने । और शिष्य शूरवीरता से कैसे रहे यह मुझे बताईये । ||९२||

से सब मुझ कुं भेव बतावो || प्रसण होय ग्यान निज लावो ||
सत्तगुर सुणो सिष का भेवा || साचा गुरू ग्यान रस लेवा ||९३||

यह सब भेद मुझे बताईये । आप प्रसन्न होकर आपका निजज्ञान मुझे बताईये । सतगुरू आप शिष्य के भेद का वर्णन सुनिए । सच्चे गुरू होंगे उनके ज्ञान का रस लिजीए । ||९३||

गुरू वायक ||

आप तिरे और न कुं तारे || पिन्ड ब्रहमंड का भेद बिचारे ||
सो सब ग्यान पिन्ड मे जोवे || सिल साच खिम्या घट होवे ||९४||

गुरूने कहा । गुरू ऐसा होना चाहिए,कि स्वयं तरे और दूसरों को भी तार दे । और पिण्ड में सारे ब्रम्हाण्ड के भेद का विचार करके देख लेगा । वह गुरू सारे ब्रम्हाण्ड का ज्ञान अपने पिण्ड में ही देख लेगा । ऐसे गुरू के घट में शील(ब्रम्हचर्य),साच(साहेब का विश्वास)और क्षमा रहती है । ||९४||

जा सुं चाल जुगमे आया || ज्यांते बिछडया ज्हा जाय समाया ||
नेणा देख कहे सो साची || काना सुणी द्रिढावे काची ||९५||

और जहाँ से चलकर अलग होकर संसार में आया उसी में जाकर समा गया और जो गुरू आँखो से देखकर कहता है वही गुरू सच्चा है । जो गुरू दूसरों का कहा हुआ ज्ञान कान से सुनकर दूसरों को(शिष्य को)धारण करने के लिए कहता है,वह गुरू कच्चा है । ||९५||

काना सुणी सिष नर गावे || तब लग सन्त मन नही भावे ||
सीख ग्यान सत्तगुर होय बेठा || से सिख भ्रम कपट में पेठा ||९६||

और कानों से सुनकर सीख जाता है,वही सीखा हुआ ज्ञान दूसरों को वर्णन करके बताता है । तब तक वह संत मेरे मन में भाता नही है । जो दूसरों के कहे हुए ज्ञान सीखकर सतगुरू बनकर बैठे है तो हे शिष्य वे गुरू भ्रम और कपट में डूबे हुए है । ||९६||

नेचे जाय नरक के मांहि || सीख ग्यान सतगुर कुवाई ||
निज तत शब्द भेद नही पावे || सिख साखा शिर हुकम चलावे ||९७||

वे गुरू निश्चित ही नर्क में जायेंगे । वे दूसरों के पास से ज्ञान सीखकर सतगुरू बन बैठे है, उन्हे निजतत्त का याने सत शब्द का भेद नही मिला है । वे गुरू बनकर अपने

चेले,शिष्य व शिष्यों के शिष्य के उपर हुकुम चलाते है । ||९७||

**से गुर झूट भेद नही पाया || सुण सुण ग्यान ओराँ के भाया ||**
**चोडे अर्थ जुग के मांही || बिन दिठा सब झूट कहां ही ||९८||**

वे गुरू झूठे है कि जिन्हे स्वयं को ही भेद नही मिला व वे दूसरों का ज्ञान सुन-सुनकर दूसरों को बताते है । यह जगत में प्रगट अर्थ है कि आँखो से देखे बिना जो बताते है वे सभी गुरू झूठे कहलाते । ||९८||

**देख कहे साचा जन होई || सुण सिष भेद बताऊँ ताई ||**
**साचा गुरू सुध बुध्द सांई || सिष को कारज सिष के मांही ||९९||**

जो आँखो से देखकर कहते है वही जन संत सच्चे है । शिष्य तुम सुनो । इन दोनों सच्चे गुरू और झूठे गुरू का भेद मैं तुम्हे बताता हूँ । जो सच्चे गुरू है,उन्हे सांई(स्वामी)की सुध बुध है, वे शिष्य का कार्य,शिष्य के तनमे ही कर देते है । ||९९||

**कायर सिष पास जो बैठा || बोहोत ग्यान पण वे नई सेठा ||**
**गुर सिमरथ सिष सुरा चहिये || जब जुग जीत अटळ घर रहिये ||१००||**

गुरू सच्चे होंगे और कायर शिष्य याने गुरू के बताए नुसार साधना करने में,डरनेवाला शिष्य सच्चे गुरू के पास भी बैठा,उसे सतगुरू ने बहुतसा ज्ञान भी दिया,तो भी वह शिष्य पक्का मजबूत नही होगा । गुरू तो समर्थ होना चाहिए और शिष्य गुरू जो करने के लिए कहेंगे,उसमें आगे पीछे न देखते हुए,कूदकर करनेवाला,ऐसा शूरवीर होना चाहिए । तब वह शिष्य जगत को जीतकर,अटल घर में जायेगा । ||१००||

**सिष साजे गुर भेव बतावे || दोनु तिड़ा बरोबर व्हावे ||**
**जब ही जोग चडे निर्वाणा || भ्रगुटी ध्यान समाधी ध्याना ||१०१||**

गुरू जिस प्रकार से भेद बतायेगें,शिष्य उसी तरह से साधना कर लेगा । तभी दोनों किनारे बराबर कहलायेगें ।(नदी का पानी एक ही किनारे से बहते रहा,तो दूसरे किनारे पर पानी नही मिलता है । जब नदी दोनों किनारों पर भरपूर बहेगी,तभी दोनों किनारों पर पानी मिलेगा ।) और तभी योग निर्वाण पद चढ़ेगा । शिष्य को त्रिगुटी का ध्यान लगकर,समाधी लग जायेगी । ||१०१||

दोहा ||

**सो गुर कुं नर भुलग्या || तिन कुं वार न पार ||**
**नरक कुन्ड सुखराम क्हे || जुग जुग झुलण हार ||१०२||**

ऐसे गुरू को जो मनुष्य भूल जाते है,उसे केवल वार-पार नही मिलता है । ऐसे शिष्य युगों तक,नर्ककुण्ड में झूलते रहेंगे । ऐसा सतगुरू सुखरामजी महाराज बोले । ||१०२||

**जुग जुग संगत साध की || प्राण संवा गुर देव ||**
**सो अबनासी आसरे || सुखीया सब जुग सेव ||१०३||**

युगो–युगो में साधू को संगत करेगा । और गुरूदेव को अपने प्राणों की अपेक्षा भी अधिक समझेगा । अविनाश के आसरे रहेगा । उसकी सारा जगत सेवा करेगी । ।।१०३।।

सो संग कदे न बिछड़े ।। सदा रहे इन पास ।।
ता कुं तज सुखराम के ।। करे आंन की आस ।।१०४।।

जो हमेशा संग में रहता है । वह कभी भी अलग नही होता है । ऐसे रामजी को छोड़कर अन्य दूसरे देवों की कभी आशा नही करता है । ।।१०४।।

ओ गुर अेता गुण रहे ।। सन्त कहे मुख बेण ।।
आद अंत सुखराम क्हे ।। सत पुरषा का सेण ।।१०५।।

यह गुरू इतने गुण करते है,ऐसा संत अपने मुँख से वचन बोलते है । आदी से अन्त तक वो सतपुरूष का सज्जन है,ऐसा सतगुरू सुखरामजी महाराज कहते है । ।।१०५।।

तिण नर अे गुर ना लख्या ।। बुडा आन उपास ।।
मगन हुवा सुखराम क्हे ।। मन ही मन की आस ।।१०६।।

जिस मनुष्य ने,ऐसे गुरू को नही जाना और अन्य देवों की उपासना करने में डूब गया । वे अपने मन में ही,मन की आशा में,मग्न हो गये । ।।१०६।।

साचा सत्तगुर संग रे ।। मत तज दिजे पूठ ।।
इण खून सुखराम केहे ।। जुग जुग ले जम लूठ ।।१०७।।

सच्चे सतगुरूके संग में रहो । सच्चे सतगुरूको छोड़कर,उनकी तरफ पीठ मत करो । नही तो इस गुनाहके कारण,युगों–युगों में यम लूटेगा ऐसा सतगुरू सुखरामजी महाराज बोले ।।।१०७।।

सिष वायक ।।

संख जोग नवद्या कही ।। ओर अष्टंग को भेव ।।
परा भक्त मो सुं कहो ।। सिख बुजे गुर देव ।।१०८।।

शिष्य ने कहा,आपने मुझे सांख्य योग बताया,नव विद्या(नवधा)भक्ती बताई और अष्टांग योग का भेद भी मुझे बताया । अब परा भक्ती मुझे बताईये । इस प्रकार शिष्य,गुरूदेव से पूछ रहा है । ।।१०८।।

गुर वायक ।।

मे सब ही मत बरणिया ।। फेर या का बिश्राम ।।
अब परा भक्त तो सुं कहुँ ।। ज्युं पुंते निज धाम ।।१०९।।

गुरू ने कहा,कि मैंने सभी मत वर्णन करके कहा और उन मतो का पहुँचनेके स्थान भी बताये । अब तुम्हे पराभक्ती बताता हूँ । उस पराभक्ती से तुम,निजधाम में पहुँच जाओगे ।।१०९।

नवदा निरफल नाँव बिन ।। अष्टंग बड़ी उपाद ।।
संख जोग स्यारो नहीं ।। विदिया मांहि वाद ।।११०।।

यह नवधा भक्तीमे निजनाम नही है इसलिए परमपद पाने के लिए निष्फल है ।फिर भी परमपद नही मिलता और अष्टांग योग यें बड़ी उपादी है । सांख्य योग में परमपद का आधार नही है और अन्य माया की विद्या सीखने में वाद विवाद होता है । ।।११०।।

**परा भक्त सब सुं सिरे ।। सन्ता करी कबूल ।।**
**हे सिष या बिन दुसरी ।। सब माया की भूल ।।१११।।**

यह पराभक्ती सभी में श्रेष्ठ है । इसलिए सभी संतो ने कबूल किया है । हे शिष्य,इस परा भक्ती के अलावा जितनी भक्तीयाँ है,माया के द्वारा डाली गयी भूल है । ।।१११।।

**परा भक्त घट प्रगटे ।। तो साहिब सदा हजूर ।।**
**द्रब नेण देखे सदा ।। तेज पूंज का नूर ।।११२।।**

यह पराभक्ती घटमें प्रगट हो जानेपर,साहेबके सदैव हजूर(साथ)रहता है । उस साहेब का तेजपुन्जका नूर मायाके तेजपुंज समान सतस्वरुपके दिव्य नेत्रोसे सदैव देखते रहता है ।।११२।

**शब्द घोर तिहुँ लोक मे ।। आगे अगम उजाळ ।।**
**जन सुखिया उण देस मे ।। कोई जुंरा न झाँपे काळ ।।११३।।**

इस शब्द की घोर आवाज(ध्वनी)तीनों लोक में होता है और आगे अगम देश में उजाला होता है,सतगुरू सुखरामजी महाराज कहते है कि उस देश में बुढ़ापा नही आता है और काल झड़प नही डालता है । ।।११३।।

साखी ।।

**सरवण शब्द पधा रिया ।। तब असी गम होय ।।**
**सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। भेद बताऊँ तोय ।।११४।।**

जब सर्व प्रथम गुरू के मुँख से शब्द शिष्य के कानों में आता है तब ऐसा मालुम पड़ने लगता है,हे शिष्य तुम सुनो,मैं तुम्हे भेद बताता हूँ । ।।११४।।

**वां बेदासा व्हे नई ।। बेठ निरन्तर जाय ।।**
**सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। श्रवण सबद के बाय ।।११५।।**

जहाँ किसी भी प्रकार की बोल-चाल,कोलाहल नही होता ऐसे एकान्त स्थान पर जाकर बैठना चाहिए । ऐसे एकान्त स्थान पर जाकर गुरू से शब्द कानों से सुनो ऐसा सतगुरू सुखरामजी महाराज बोले । ।।११५।।

**रसणा मे रस ऊपजे ।। खट रस न्यारा साब ।।**
**सुण सिष तु सुखराम केहे ।। अे ब्रम्ह मिलण का चाव ।।११६।।**

फिर रसना से सुमिरन करने पर रसना में(जीभ में)रस उत्पन्न होता है । उस रस का छ: तरह का अलग-अलग स्वाद आने लगता है । शिष्य तुम सुनो,यह ब्रम्ह मिलने का लक्षण है ।११६।

खाटा मीठा चरपरा ।। इम्रत उतऱ्या जोर ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। लिव बंध लागी ड्डोर ।।११७।।

खट्टे मिठे(खट्टा मिठा मिश्रीत)और चरपरा,जोर से अमृत उतरने लगा । शिष्य तुम सुनो,लव बंध भजन की डोर लग गयी । ।।११७।।

कंठ मे गद गद ऊपजे ।। निरख रहयो तब मन ।।
सुंण सिष तुं सुखराम क्हे ।। धिन गुर साधु जन ।।११८।।

और कंठ में गद गुदगुदी उत्पन्न होती है । ये चिन्ह मन देख रहा है । सतगुरू सुखरामजी महाराज बोले,शिष्य तुम सुनो । वे गुरू,वे साधू और वे जन धन्य है । ।।११८।।

हिरदा मे फरफर हुवा ।। शब्द समागम माँय ।।
सुंण सिष तुं सुखराम क्हे ।। हियो भर भर जाय ।।११९।।

कंठ से शब्द हृदय में आया । तब फरफर होने लगा । और शब्द का अन्दर समागम हुआ । शिष्य तुम सुनो । हृदय भर-भर कर,नाभी में जाने लगा । ।।११९।।

नांव कंवळ हर आविया ।। गरजी सब बनराय ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। बास चहुँ दिस जाय ।।१२०।।

जब नाभी कमल में शब्द आने लगा,तब वनराय गरजने लगी । (रोम-रोम से शब्द निकलने लगा ।) तो शिष्य तुम सुनो । तब सुगंधी चारो तरफ जाने लगी । ।।१२०।।

मोर पपइया बोलीया ।। भँवरा करे गुंजार ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। ज्युं जाण्यो सेर सवार ।।१२१।।

वहाँ मोर बोलने की आवाज और पपीहा बोलने जैसी और बहुतसे भँवरे,एक साथ गुंजार करते है,ऐसी गुंजार ध्वनी मालुम पड़ने लगी । शिष्य तुम सुनो,जिस प्रकार से एकदम सुबह,शहर के लोग जब जाग जाते है,तो उनकी जैसी आवाज होती है,वैसा मालुम पड़ने लगा । ।।१२१।।

ठंडी लहरां उपाय कर ।। अब धसिया पाताळ ।।
सुंण सिष तुं सुखराम क्हे ।। सेस दरस दिदार ।।१२२।।

और ठंढी-ठंढी लहर उत्पन्न होकर,अब नीचे पाताल में धँसा । शिष्य सुनो,वहाँ पाताल में शेष का(कुंडलिनी का)दर्शन होकर,शेष दिखाई देने लगा । ।।१२२।।

सुरत शब्द मिल उलटिया ।। खुलिया पिछम घाट ।।
सुंण सिष तूं सुखराम क्हे ।। पाई आदु बाट ।।१२३।।

वहाँ से सुरत और शब्द एक जगह मिलकर,बंकनाल के रास्ते उलटता है । तब पश्चिम का घाट खुला । सतगुरू सुखरामजी महाराज बोले,शिष्य तुम सुनो । वहाँ से आदी घर का रास्ता
मिला । ।।१२३।।

जांहाँ हम धोती पेरता ।। रेई कनारी जाण ।।
सुंण तुं सिष सुखराम क्हे ।। शब्द लख्या परमाण ।।१२४।।

जहाँ धोती पहनते थे,रही उसके किनारी के जगह ( 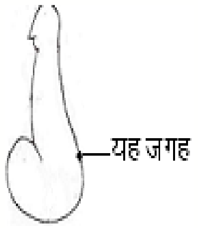

)। शिष्य तुम सुनो,शब्द लखा । ।।१२४।।

अब चड़ीया असमान कुं ।। जाकी सुणज्यो आण ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। दे ज्युं चड़ी कबाण ।।१२५।।

अब यहाँ से आसमान में चढ़ा । उसकी हकीकत आकर सुनो । शिष्य तुम सुनो,यह देह (शरीर) कमान के जैसा बनकर चढ़ गया । ।।१२५।।

मेर थान अस्थान था ।। जब असी गम होय ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। धनक चड़ायो जोय ।।१२६।।

मेरू के स्थान में जा रहा था । तब हे शिष्य तुम सुनो,जैसे धनुष्य बाण खीचते है,वैसे ही पीठ,कमानी के जैसे झुक गयी । ऐसा मालुम हो रहा था । ।।१२६।।

सुरग इकिसी छेकिया ।। ज्युं सार सुं काट ।।
सुण सिख त्तुं सुखराम क्हे ।। दुल्लब पिछम बाट ।।१२७।।

पीठ के इक्कीस स्वर्ग का जब छेदन किया वह जैसे छर्रे से लकड़ी में छेद करते है वैसे ही पीठ के इक्कीस मणियों का छेदन किया । शिष्य तुम सुनो यह पश्चिम के रास्ते से जाना बहुत दुर्लभ है,कठिन है । ।।१२७।।

बस्त अमाउ भर रही ।। बासण जोखो खाय ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। शब्द मेर घर मांय ।।१२८।।

जैसे किसी बर्तन में वस्तु समाती नही है,बहुत दबाकर भरने पर,बर्तन तड़क जाता वैसे तड्कनेका डर उपजता है । शिष्य तुम़ सुनो । तब शब्द मेरू के घर आता है । ।।१२८।।

अब चड़ीया सुमेर पर ।। बचन न बोल्या जाय ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। मन डरप्यो तन मांय ।।१२९।।

अब सुमेरू के उपर चढ़ा । तब वचन नही बोले जाता । शिष्य तुम सुनो । शरीर में निजमन डरने लगा । ।।१२९।।

साय करी जग दीस ने ।। सामां मेल्या सेण ।।
सुंण सिष तुं सुखराम क्हे ।। बोल्या अमृत बेण ।।१३०।।

मन डरने लगा,तब जगदीशने सहायता किया,जानकार को सामने भेजा । वह जानकार सामने आकर,अमृत के जैसे मीठे वचन,बोलने लगे । ।।१३०।।

सेण संग होय ले चल्या ।। उडया सुन की बाट ।।
सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। खुलीया भिस्त कपाट ।।१३१।।

वो सामने आये हुए जानकार,मेरे साथ होकर मुझे लेकर चले । वो मुझे लेकर सुन्न के

रास्ते से उड़े । शिष्य तुम सुनो,आगे भेस्त का(वैकुण्ठ का),दरवाजा खुला । ।।१३१।।

**दोनु तरफा दोय लगी ।। बिचे सुख मण सीर ।।**
**सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। मिल्या त्रिवेणी तीर ।।१३२।।**

दोनों तरफ से इड़ा और पिंगला ऐसे दोनो लगी । और इन दोनों के बीच में सुषमना लगी । शिष्य सुनो । ये इड़ा,पिंगला और सुष्मना जिस जगह पर एकत्रित होते,उस त्रिवेणी के किनारे पर जाकर मिला । ।।१३२।।

**तीनु मिल मन एक वां ।। चल्या पीव के पास ।।**
**सुंण सिष तुं सुखराम क्हे ।। छूटी आन उपास ।।१३३।।**

तीनों मिलकर एक हुयी । वहाँ से पीव(पती के)पास चला । शिष्य सुनो । आन याने दूसरी सब उपासना छूट गयी । ।।१३३।।

**पिव द्रस्या प्रस्या सही ।। जामे फेर न कोय ।।**
**सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। भेद बताऊँ तोय ।।१३४।।**

आगे जाने पर पती का दर्शन हुआ और पती को परसा । यह बात सही है । (परसने में कोई अन्तर नही रहा),शिष्य तुम सुनो । यह मैं इसका भेद बताता हूँ । ।।१३४।।

**पोप बासना लिजीये ।। सांसो नही लगार ।।**
**सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। अलख पुरष दीदार ।।१३५।।**

वहाँ जाकर फूल की सुगन्ध लो । और सांसो(फिक्र),कुछ भी लगार(किंचीत),मात्र भी नही । शिष्य सुनो । वहाँ अलख पुरूष का दीदार है । ।। १३५ ।।

**जळ मे मच्छी रम ही ।। गेल न दरसे कोय ।।**
**सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। हरजन मे हर होय ।।१३६।।**

पानी में मछली खेल रही है,उस मछली के आने-जाने का रास्ता,कुछ किसी को दिखाई नही देता है । इसी तरह से हरजन में(संत में)हर है । ।।१३६।।

**थाळी मे झणणाट रे ।। बाजा मांय छत्तीस ।।**
**सुंण सिष तुं सुखराम क्हे ।। युँ जन मे जगदिश ।।१३७।।**

इस प्रकार से हरजन में हर रहता है,जैसे कांशे की थाली में झनकार ध्वनी रहती है,(ऐसे तो कांशे की थाली में झनकार दिखाई नही देती,परन्तु उसे धक्का लगने पर उसमें से आवाज निकलती है । वह झनकार उसमें थी तभी निकली,नही होती तो कहाँ से आवाज आती)। इसी तरह से बाजे,हारमोनियम,सितार,सारंगी आदी से छत्तीस प्रकार के राग रागिनी निकलते है । इसी तरह से हर जन में(संतो में),ब्रम्ह का वाक्य(ब्रम्ह ज्ञान निकलता है ।)बाजे में छत्तीस रागिनीयाँ थी । इसलिए निकल रही थी । वैसे ही हरीजन में हर है । तो शिष्य सुनो । इसी प्रकार से जन(संत में)जगदीश है । ।।१३७।।

**तेल तीला मे नीस रे ।। जामे फेर न सार ।।**

सुण सिष तुं सुखराम क्हे ।। गुर मिलीयां दीदार ।।१३८।।

तेल तिलमें से निकलता है । इसमें फेर–फार नही है । तो शिष्य सुनो । गुरू मिलने पर दिदार होता है । (तिल में तेल है,वह ऐसे तो दिखाई नही देता है । परन्तु उसे कोल्हू में डालकर पेरने पर,उसमें से तेल निकलता है ।) इसी तरह से गुरू मिलने पर हर भासता है । ।।१३८।।

सवइयो इन्द व छन्द ।।

सांस उसांस कहे हरी नाम ।। फिरे रसणा मुख मे दिन राती ।।
धिरज ध्यान अडोल न डोले ।। आसण मार उका सु छाती ।।
नाळ समीसळ राखत नाही ।। मोडत अंग न बन्धत बाती ।।
मन कुं थोब पवन सुं मेळा ।। सुरत समोय निरत कर साती ।।
सुखराम कह युं ध्यान धरो ।। ज्युं दीप सुं जोत जले हे बाती ।।१३९।।

सांस उसांस से(आती–जाती श्वांस से),हर नाम लेने लगता है । मुँख में रसना रात–दिन चलने लगती है । ध्यान करता है,धीरज रखता है और आसन ऐसा लगाता है,कि अडोल न डोले,डोलता नही । (डगमगाता नही),ऐसा आसन लगाकर,उकासू छाती(तनी हुयी छाती) और अपनी गर्दन सीधी रखता है,गर्दन में सल(ढ़ील)पड़ने नही देता है । और मोडत अंग न (देह तोड़ता नही) और बंधत बाती ( ),मन को रोककर,मन का और श्वांस का मेल कर देता है । इस मन और श्वांस में,सुरत भी मिला देता है । इनके साथ में,निरत को भी कर देता है । (निरत यानी सुरत पर ध्यान रखनेवाली),इन चारो का संग कर देता है । सतगुरू सुखरामजी महाराज बोले,कि इस तरह से ध्यान धरो,जैसे दीपक की ज्योती से,उपर के दिये की बाती जल जाती है । ।।१३९।।

कवत ।।

सत्तगुरू सम्रथ होय ।। ग्यान की कसर न राखे ।।
आद अंत की बात ।। ताप ले भिन भिन भाखे ।।
सिष बूजे सो वार ।। झळक ऊना नही होवे ।।
धिरज सुं दे ग्यान ।। भ्रम सिष का सब खोवे ।।
उलज्या कुं सुल जाय दे ।। अे सत्तगुर सेनाण ।।
दुजा तो सुखराम के ।। कन फुका गुर जाण ।।१४०।।

सतगुरू समर्थ होने पर शिष्य को ज्ञान बताने में कोई कसर नही रखते है । वो समर्थ सतगुरू आदी और अंत की बात लेकर भिन्न–भिन्न करके बताते है । शिष्य ने सौ बार पूछा तो भी खीझकर क्रोधित नही होते । शिष्य को धैर्य पूर्वक(शांती पूर्वक)ज्ञान देकर शिष्य का सभी भ्रम निकाल देते है । शिष्य कैसे भी फांसे में उलझा हुआ हो तो भी उसे सुलझा कर उलझे हुए शिष्य को मुक्त कर देते है और दूसरे गुरू तो सतगुरू सुखरामजी महाराज कहते है कि कान फूंकनेवाले गुरू जानो । ।।१४०।।

करे झोड बोहो भांत ।। भेद बिन पूस पीछाटे ।।
जड़ी रोग गम नाय ।। फूस कच रो सब बांटे ।।
पुंगी रांग बिराग ।। ढोल बिन सुध बजा वे ।।
चहुं दिस चाले गेल ।। राग बिन नाटक गावे ।।
सिकल बिकल चरचा करे ।। देश अर्थ नही मांय ।।
जां के संग सुखराम क्हे ।। जीव गंता सुं जाय ।।१४१।।

दूसरे गुरू बहुत तरह से झोड़ करते,बक–बक करते उस गुरू को भेद तो है नही,वह भेद के बिना,भूसा फटकते है । (जैसे भूसे में दाना तो नही है,परन्तु वह उसे फटकता है,तो उसमें दाना रहे बिना,कहाँ से निकलेगा ? ऐसे ही जिस गुरू को भेद नही मालुम है,वह भेद के बिना कचड़ा फटकता है,तो उस फटकने से,भेद कहाँ से निकलेगा ।)जड़ी की(औषधी के जड़ी की)और रोग की जानकारी नही है,परन्तु घास–फूस,तिनका,सब लेकर खलबत्ते में कूटता है और पुंगी(बीण)बजाने नही आता,वह बीन बिना राग के,बिना रागिनी के,(बेसुरा)बजाता है और ढोल बजाने नही आता है,बिना सुध का ढोल बजाता है और रास्ता मालुम नही है,चारों दिशाओं में,कभी पूरब,तो कभी पश्चिम को,कभी उत्तर,तो कभी दक्षिण,ऐसा चारो–चारो दिशाओं में चलनेवाला,कहाँ जाकर पहुँचेगा । नाटक का राग मालुम नही और रागीनी के बिना नाटक गाता है । इसी तरह से जो गुरू सिकल–विकल चर्चा करता है । (इधर–उधर की चर्चा करता है ।)तो उसके चर्चा करने से उद्येष और अर्थ कुछ भी नही निकलेगा । ऐसे गुरू के संग में,जीव गतास(समूल नष्ट हो)जाता है । ऐसे गुरू का संग मत करो,ऐसा सतगुरू सुखरामजी महाराज बोले । ।।१४१।।

।। इति श्री गुरू शिष्य को संवाद संपूरण ।।